

पर्यावरणीय अवनयन, आपदा प्रबन्धन एवं नियोजन का भौगोलिक आकलन

सारांश

आपदा एक अनचाही और अचानक होने वाली घटना है जो उत्पादन प्रक्रिया, उपकरण और आसपास के जन-जीवन पर कुप्रभाव डाल सकती है। इसलिए यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि संयंत्र सुरक्षित और विश्वसनीय है। साथ ही सम्भावित दुर्घटनाओं का पूर्वानुमान और दुर्घटना की स्थिति से बचाव की नीति तथा उपायों का पर्याप्त ज्ञान कामगारों तथा आसपास रहने वाले लोगों तक पहुंचाना आपदा प्रबन्ध योजना में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार भावी विकास कार्यों और संयंत्रों के लिए समुचित स्थान के चयन एवं उनसे होने वाले विपरीत प्रभावों को कम से कम करने में पर्यावरण प्रभावों के मूल्यांकन की प्रक्रिया का अमूल्य योगदान रहता है। वातावरण का ह्रास पर्यावरण अवनयन समानार्थक है। कुछ विद्वानों द्वारा इसके लिए पर्यावरण अवकर्षण, पर्यावरण का अध्यापन या पर्यावरण का निम्नीकरण शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है।

मुख्य शब्द : पर्यावरणीय अवनयन, आपदा प्रबन्धन एवं नियोजन।

प्रस्तावना

पर्यावरण अवनयन का अर्थ है पर्यावरण के भौतिक संघटकों में जैविक प्रक्रमों खासकर मनुष्य की क्रियाओं द्वारा इस सीमा तक ह्रास एवं अवक्रमण हो जाना कि उसे पर्यावरण का स्वतः नियामक क्रिया विधि होम्योस्टैटिक क्रिया विधि द्वारा सही नहीं किया जा सकता। वस्तुतः पर्यावरण के सभी तत्व पृथक-पृथक होते हुए भी परस्पर निर्भर हैं और सम्मिलित रूप से क्षेत्रीय पारिस्थितिक तंत्र को नियंत्रित करते हैं। जब तक इन तत्वों का आनुपातिक स्वरूप अक्षुण्ण रहता है तब तक पर्यावरण संतुलित रहता है और जीवन सामान्य रूप से चलता रहता है। परन्तु जैसे ही एक तत्व के आनुपातिक परिमाण में अंतर उत्पन्न होता है उसका प्रभाव अन्य तत्वों पर भी पड़ता है और पर्यावरण असन्तुलन की अवस्था उत्पन्न हो जाती है यदि यह असन्तुलन सामयिक और सीमित होता है तो प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र उसे अन्तःनिर्मित स्वतः नियामक क्रियाविधि द्वारा प्रति संतुलित कर लेता है, परन्तु यदि प्राकृतिक पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र में उत्पन्न आनुपातिक परिवर्तन स्वतः नियामक क्रिया विधि की क्षमता से परे हो जाये तो पर्यावरण का ह्रास अथवा अवनयन प्रारम्भ हो जाता है। वातावरण के ह्रास के लिए मानवीय तथा प्राकृतिक दोनों प्रक्रियायें उत्तरदायी हैं अथवा इन दोनों के सम्मिलित प्रभाव से भी पर्यावरण का ह्रास उत्पन्न होता है। अतः वातावरण ह्रास हेतु उत्तरदायी कारकों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार

प्राकृतिक आपदायें

इनके अंतर्गत विभिन्न प्राकृतिक प्रकोप तथा घटनायें सम्मिलित हैं जो पर्यावरण संतुलन को नष्ट कर देती हैं। ज्वालामुखी विस्फोट, भूकम्प, भूस्खलन, वायुमण्डलीय विकोभ, उपलवृष्टि, अतिवृष्टि और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदायें आदि प्राकृतिक प्रकोपों के अंतर्गत आती हैं। इनके अतिरिक्त बर्फीले तूफान, बनाग्नि, महाद्वीपीय विस्थापन, मरुस्थलीकरण आदि प्राकृतिक प्रक्रियाओंद्वारा भी पारिस्थितिकीय संतुलन में अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

मानवीय आपदायें

मनुष्य की प्रकृति पर बढ़ता हुआ नियन्त्रण मनुष्य के जीवन को नष्ट कर सकता है। यद्यपि मानवीय प्रक्रियायें पर्यावरण ह्रास के लिए उत्तरदायी हैं परन्तु उनको अधिक प्रभावकारी बनाने में मनुष्य की भूमिका को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। विकास की अंधी दौड़ में प्रगति के नाम पर मनुष्य के द्वारा अनेक ऐसे कार्य सम्पादित होते हैं जो पर्यावरण ह्रास की अनेक समस्याओं को

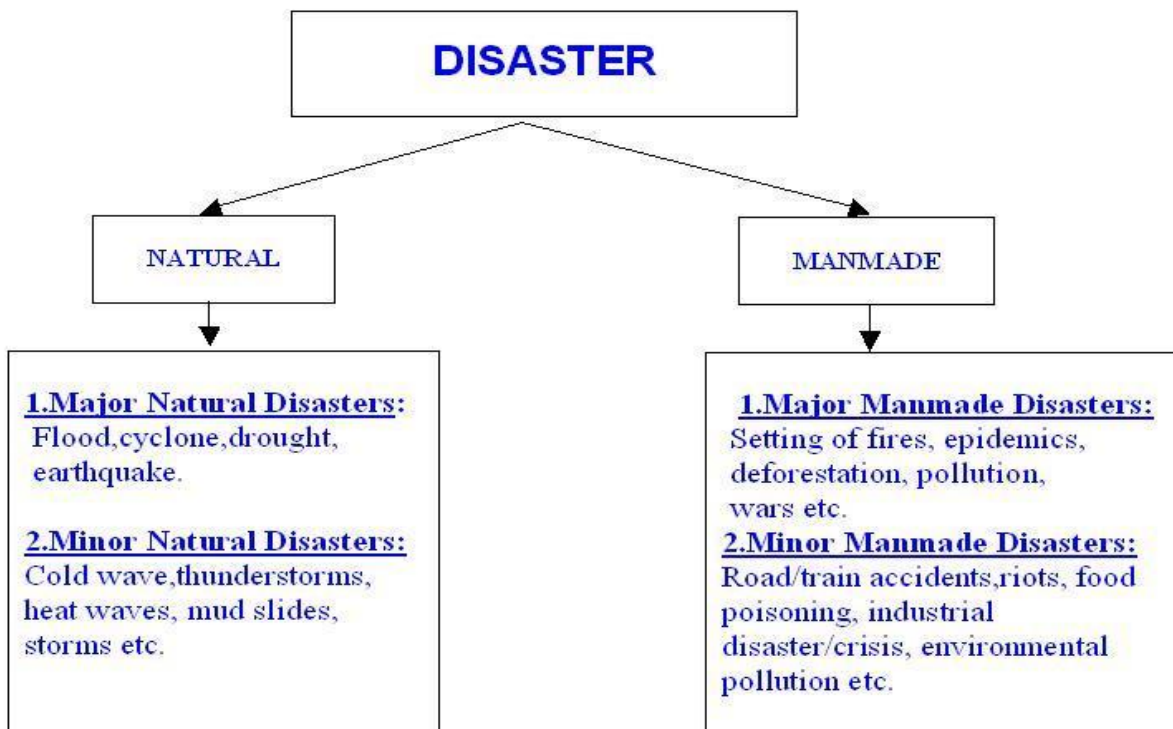


आशुतोष अग्निहोत्री

अध्यापक,
भूगोल विभाग,
सेठ आनन्दराम जयपुरिया,
कानपुर

जन्म देते हैं। मानव द्वारा पर्यावरणीय संसाधनों के अविवेकपूर्ण उपभोग एवं शोषण के प्रतिफल के रूप में पर्यावरण हास की चरम सीमा पर्यावरण प्रदूषण की समस्या स्वयं मनुष्य के जीवन के लिए आज एक चुनौती बन गई है। वनोन्मूलन, बांधों का निर्माण, खनिज-दोहन, उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग,

आधुनिक प्रौद्योगिकी, नगरीकरण, औद्योगिकरण और जनसंख्या वृद्धि आदि मानव जनित प्रक्रियाएँ पर्यावरण हास के लिए उत्तरदायी हैं। इनसे पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव विभिन्न रूपों में पर्यावरण संतुलन में विकृति उत्पन्न करके समस्त जैव जगत के अस्तित्व को खतरे में डाल रहे हैं।



पर्यावरण अवनयन के लिए जिम्मेदार प्रक्रमों एवं कारणों से भावी जीवन के प्रति निराशा जागृत होती है तथा यह भी आभास होता है कि सभी विकासीय कार्य प्रकृति तथा पर्यावरण के विपरीत हैं। ज्ञातत्व है कि यदि हमें वर्तमान समाज को विकसित करना है तथा बढ़ती जनसंख्या की मांगों को पूरा करना है तो विकास की गति को बनाये रखना होगा, परन्तु विकास कार्य पर्यावरण एवं मानव समुदाय के अस्तित्व की कीमत पर नहीं किया जाना चाहिए। डा० साविन्द्र सिंह ने पर्यावरण हास की समस्या के निदान के लिए निम्न सुझाव दिये हैं—

1. प्रदूषण मुक्त औद्योगिकी का विकास,
2. प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुन्ध विदोहन पर नियंत्रण,
3. वन विनाश से प्रभावित क्षेत्रों तथा अन्य बंजर-भूमियों पर बड़े पैमाने पर वन रोपण,
4. रासायनिक खादों, कीटनाशक एवं शाकनाशी रसायनों के प्रयोग पर नियंत्रण,
5. अवनलिका अपरदन से प्रभावित कृषि भूमि का सुधार तथा संरक्षण,
6. ओजोन को विनष्ट करने वाले रसायनों, क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उत्पादन एवं उपभोग में भारी कमी लाना।
7. वायुमण्डल के हरित गृह प्रभाव को कम करने के लिए जीवाश्म ईंधनों में कमी तथा नियंत्रण करना।
8. नाभिकीय शस्त्रों के उत्पादन पर पूर्ण रोक लगाना।

9. आम जनता को पर्यावरण के प्रति शिक्षित एवं जागरूक करना।

10. जनसंख्या वृद्धि दर पर नियंत्रण।

वातावरण नियोजन तथा प्रबन्धन औद्योगिक विकास के वर्तमान युग में संसाधनों का दोहन अनिवार्य हो गया है, जिसके परिणाम स्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन तथा प्रदूषण जैसी विभिन्न वातावरण समस्याएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यद्यपि संसाधनों का दोहन अनिवार्य है परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि पर्यावरण को विशाक्त करने वाली प्रक्रियाओं के नियंत्रण की प्रभावी व्यवस्था की जाए अन्यथा निकट भविष्य में संसाधनों का निर्माता और उपभोक्ता स्वयं मनुष्य ही संसाधनों की अल्पता एवं पर्यावरणीय प्रदूषण के जाल में उलझ कर रह जायेगा। वस्तुतः विकास कार्यों के परिप्रेक्ष्य में यह ध्यान रखना मानव हित में सर्वोपरि होगा कि संसाधनों का नियंत्रित प्रयोग हो तथा पर्यावरण प्रदूषण से पारिस्थितिक संतुलन भंग न हो। इस दिशा में किये गये समस्त उपायों को पर्यावरण नियोजन तथा प्रबन्धन के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है।

पर्यावरण नियोजन का तात्पर्य होता है विकासीय कार्यों के लिए पृथ्वी के नव्य तथा अनव्य संसाधनों का विभिन्न रूपों में उपयोग करना, दुर्लभ एवं बहुमूल्य

संसाधनों का संरक्षण तथा स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण की गुणवत्ता का परीक्षण करना।”

निश्चित व वांछित उद्देश्यों की प्राप्तिके लिए विभिन्न प्रस्तावों में से उपर्युक्त प्रस्ताव का चयन करना प्रबन्धन कहलाता है। इसके अंतर्गत अल्पकालिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक याअनेक रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं लेकिन दीर्घकालीन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए इसमें पर्याप्त व्यवस्था है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पर्यावरण नियोजन एवं प्रबन्धन के अंतर्गत एक ओर विकास की प्रक्रिया और दूसरी ओर संसाधनों के उचिततम प्रयोग एवं पर्यावरण परीक्षण की व्यवस्था निहित होती है। नियोजन एवं प्रबन्धन का उद्देश्य संसाधनों का संरक्षण भी है, जिससे उसका प्रयोग दीर्घकाल तक किया जा सके। इनमें वैकल्पिक संसाधनों की खोज तथा अनव्य संसाधनों का न्यूनतम उपयोग करना सम्मिलित है।

वातावरण प्रबन्धन के उद्देश्य

पर्यावरण प्रबन्धन का मूल उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का युक्तिसंगत उपयोग, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा, आर्थिक मूल्यों को नई दिशा प्रदान करना तथा शुद्ध पर्यावरण प्रदान करना है। यह कार्य एकांकी अथवा एक संस्था का न होकर सामूहिक रूप से ही सम्भव है। इसमें प्रशासन, सामाजिक संस्थाएँ और प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण है। “मानव द्वारा वातावरण का अधिकतम उपयोग किये जाने से उसकी गुणवत्ता में उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। जिसका प्रभाव न केवल सम्पूर्ण जैव जगत पर अपितु पर्यावरण के विभिन्न घटकों पर भी हो रहा है। फलतः वातावरण संतुलन में अनेक व्यवधान उत्पन्न हो रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप, जीवों और पादपों की अनेक जातियों का विलोपन तथा अनेक मानसिक शारीरिक व्याधियों वातावरण असंतुलन का ही परिणाम है। अतः क्षेत्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय पर्यावरण की गुणवत्ता का परिरक्षण भी आवश्यक है। वातावरण प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाये रखना है। इसके अतिरिक्त अन्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1. प्राकृतिक संसाधनों को सीमित व नियंत्रित विदोहन व उपयोग करना।
2. निम्नीकृत पर्यावरण का सुधार तथा नव्य करणीय प्राकृतिक संसाधनों का विकास करना।
3. पर्यावरण प्रदूषण को समाप्त करना।
4. प्राकृतिक प्रक्रियों तथा आपदाओं के प्रभाव को कम करने के लिए रक्षा उपायों को कार्यान्वित करना।
5. अपशिष्टों के पुनर्चक्रण एवं पुनः प्रयोग के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपभोग करना।
6. वातावरण के संदर्भ में उत्पादन की वर्तमान प्रौद्योगिकी की समीक्षा करना एवं उसमें सुधार करना।
7. वातावरण प्रबन्धन हेतु प्रस्तावित योजनाओं का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना।
8. वातावरण की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु नियमों एवं कानूनों का प्रावधान करना।

9. सतत सनातन संसाधनों का अधिकाधिक प्रयोग तथा वैकल्पिक संसाधनों का विकास करना।

10. वातावरण संरक्षण हेतु पर्यावरण बोध, प्रशिक्षण तथा जन-जागरण की योजनाओं को कार्यान्वित करना।

संसाधन दोहन एवं पारिस्थितिक संकट

वस्तुतः प्रौद्योगिकी सम्पन्न मनुष्य ने आर्थिक विकास की होड़ में भौतिक पर्यावरण को इस स्तर तक रूपान्तरित एवं परिवर्तित कर दिया कि उसका अपना ही अस्तित्व खतरे में पड़ गया। पिछली शताब्दी में जनसंख्या में आशातीत वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव बढ़ा है, फलतः निरन्तर द्विगुणोत्तर होती जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु प्राकृतिक संसाधनों का धुंआधार एवं लोलुपतापूर्ण विदोहन किया गया है जिसका सामूहिक परिणाम यह हुआ कि भौतिक पर्यावरण के कुछ संघटकों में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि उसकी क्षतिपूर्ति अन्तःनिर्मित होम्यो-स्टैटिक क्रियाविधि द्वारा सम्भव नहीं है जिससे गम्भीर पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हुआ है। यदि मानव पर्यावरण सम्बन्धों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो प्रागैतिहासिक काल में आदि मानव तथा पर्यावरण के मध्य व्याप्त मित्रवत सम्बन्ध अब शत्रुतापूर्ण हो गया है। आज प्राविधि सम्पन्न मानव की उच्च महत्वाकांक्षा एवं तीव्र आर्थिक प्रगति की अभिलाषा के कारण पर्यावरणीय संतुलन ही विक्षुब्ध हो गया है जिससे स्वयं मानव के भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। ओजोन परत का विघटन, एसिड वृष्टि, ज्वालामुखी प्रदूषण, गुम्बद, जलवायुध्वनि एवं मृदा प्रदूषण आदि समस्याएँ मानव के भविष्य को चुनौती दे रही हैं जिससे मानव अपने ही आविष्कारों एवं रचनाओं से भयाकुल हो गया है तथा पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबन्धन के प्रति सचेष्ट होता जा रहा है।

भारत के लोगों का जीवन वैदिक काल से ही नदियों से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। प्राचीन भारत का अर्थतन्त्र नदियों पर ही निर्भर करता था। इस कारण ही प्रदेशों के नाम नदियों पर आधारित थे जैसे – सप्तसिन्धु, इसका तात्पर्य है सात नदियों की भूमि। आज भी पाँच नदियों की भूमिको ‘पंजाब’ के नाम से जाना जाता है। सभ्यता का जन्म भी नदियों की घाटियों में ही हुआ था। आर्यों की “सिन्धु घाटी सभ्यता” विश्व प्रसिद्ध है। नदियों ने सदा से ही अर्थतन्त्र को प्रभावित करने के साथ ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। डॉ० विलियमके अनुसार “आज भी संसारकी एक तिहाई जनसंख्या अपना भरण-पोषण नदियों के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की भूमि से करती आ रही है।” नदियों की उल्लिखित उपादेयता को ध्यानमें रखते हुये गंगा के मैदान को भारत का धान्यागार, रेड बेसिन को चीनका हृदय, मिश्र को नील का वरदान, मिसीसिपी, मिसौरी को संयुक्त राज्य अमेरिका की मेरुदण्ड कहा जाता है।

नदियाँ सदा से ही औद्योगिक और घरेलू जल प्राप्ति की स्रोत रही हैं। नदियों के किनारे ही बड़े-बड़े नगरों का अभ्युदय हुआ है। गंगा-राम गंगा दोआब नदियों के रूप का दूसरा पक्ष यह है कि हम प्रतिवर्ष सुनते हैं कि बाढ़ से अमुक क्षेत्र में रातोंरात अपार धन-जन की हानि

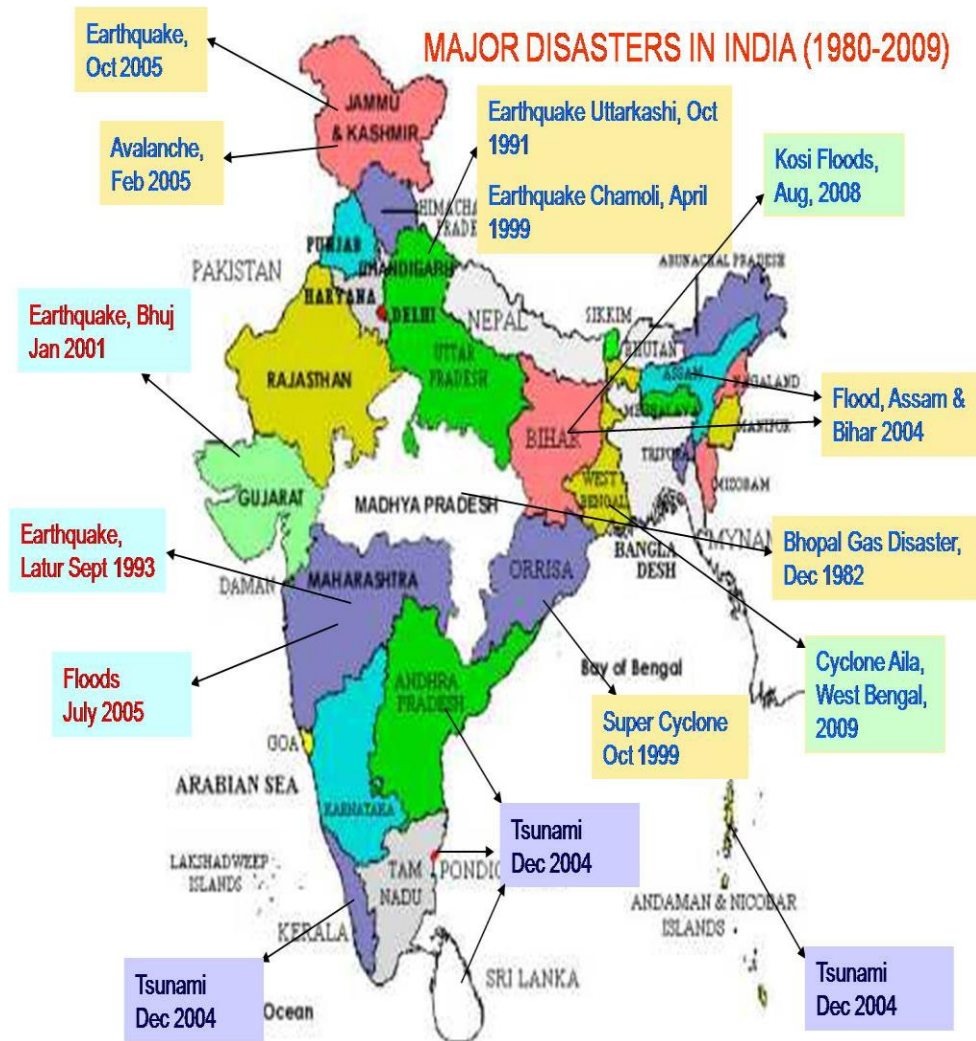
हुई। नदी का यह भयंकर विकराल रूप विनाश लीला करता हुआ खड़ी फसलों के साथ-साथ पशु-धन को भी नष्ट कर देता है। यातायात एवं संचार केसाधन अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र का देश-प्रदेश के अन्य भागों से सम्पर्क एवं संचार माध्यम कट जाता है। बाढ़ समाप्त हो जाने के पश्चात प्रभावित क्षेत्र में अनेकों बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है।

बाढ़ से तात्पर्य है विभिन्न लोगों के लिये विभिन्न कष्ट एवंकार्य। बाढ़ग्रस्त कृषकों के लिये दिन-रात का भयावह दृश्य, पत्रकारों केलिये जोरदार समाचार, सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये कुछ करने का उपयुक्त समय, अन्य कार्यो से जुड़े लोगों के लिये बाढ़ से उत्पन्न होने वाली समस्याओं में रूचि का होना है। बाढ़ का अध्ययन और आवश्यक नियंत्रण उपायों का उपयोग आज की अनिवार्य आवश्यकता है। सम्पूर्ण रूप से बाढ़ पर नियंत्रण करना एक असम्भव भौगोलिक तथ्य है। हमें सदैव बाढ़, विभीषिका के साथ जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, परन्तु इस विभीषिका केप्रकोप को राष्ट्रीय स्तर पर योजना बनाकर न्यूनीकृत किया जा सकता है। विगत कुछ वर्षों का अध्ययन करके किसानों ने ऐसा निष्कर्ष निकाला है किअब आने वाली बाढ़ की प्रबलता तथा बारम्बारता कुछ अधिक ही अनुभवकी जा रही है।

भारतीय उपमहाद्वीप ने सदैव से मौसम सम्बन्धी विरोधाभास एवं जटिलताओं का सामना किया है।

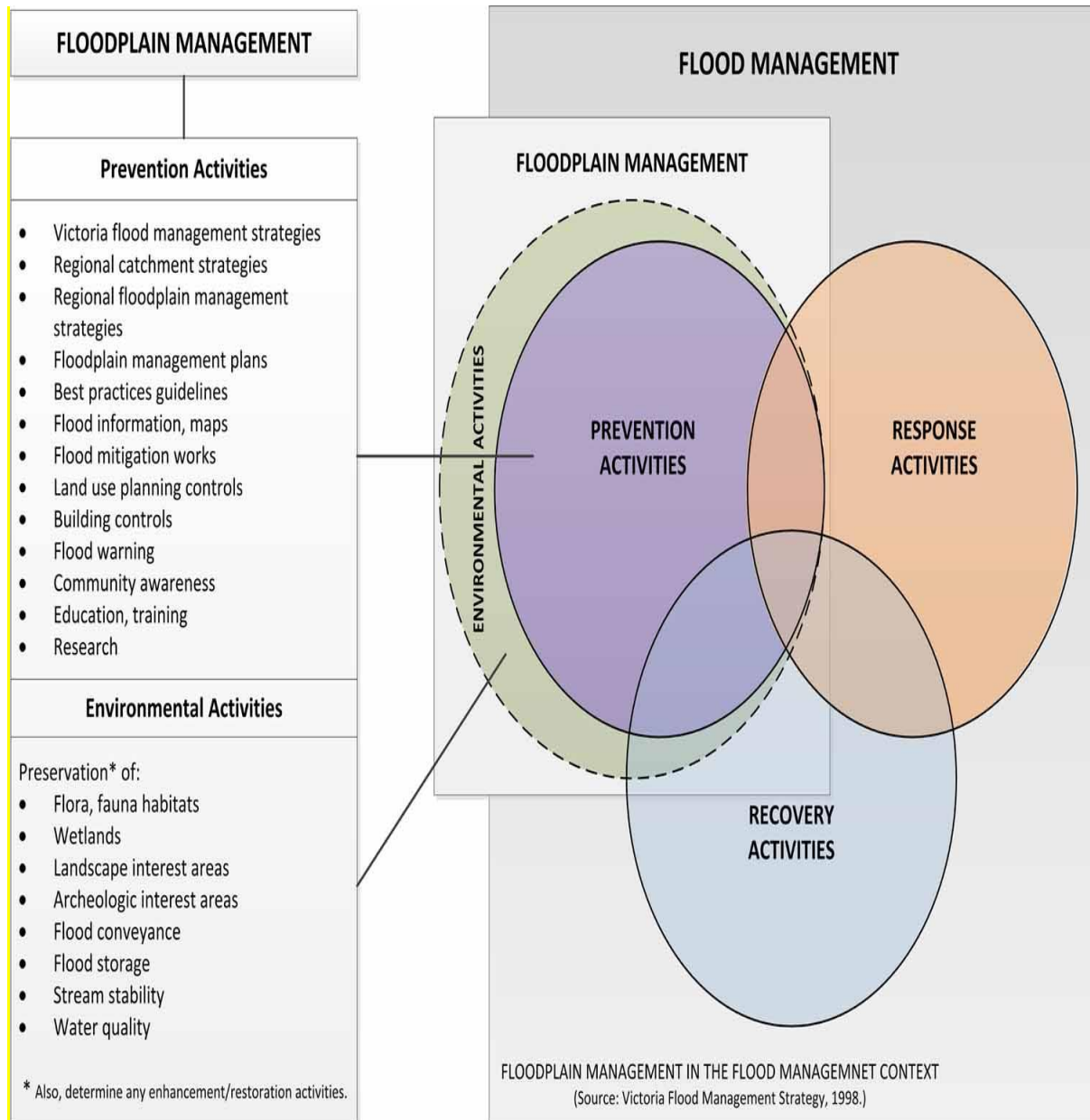
इसीलिये भारतीय कृषि को 'मानसून काजुआँ' कहा जाता है। मानसून की इसी अनिश्चितता के परिणाम स्वरूप कुछ स्थानों पर भारी वर्षा हो जाती है। अत्यधिक मात्रा में होने वाली वर्षा नदियों के तटों को छोड़कर समीपवर्ती क्षेत्रों में प्रसरित हो जाती है। वर्षा की प्रसरित जलराशि "बाढ़" के नाम से जानी जाती है और सम्बन्धित क्षेत्र मेंतबाही का कारण बनती है। वैदिक साहित्य में भी अत्यधिक वर्षा को रोकने के लिये की जाने वाली प्रार्थनाओं का वर्णन मिलता है। मुगल काल में भीबाढ़ों का उल्लेख मिलता है उससे होने वाली क्षति से बचने के लिये कुछ भी कार्य नहीं किया गया। ब्रिटिश काल में बाढ़ ग्रस्त जनपदों में तटबन्धोंका निर्माण कराया गया था, परन्तु अध्ययन से ऐसा पाया गया है कि कुछ महत्वपूर्ण नगरों को ही बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करने हेतु ऐसा किया गया था।

इतिहास बताता है कि भारत अनेक प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं काशिकार होता रहा है। चक्रवात, बाढ़, भूकम्प और सूखा इनमें से प्रमुख आपदाएँ हैं। देश का साठ प्रतिशत भू-भाग विभिन्न तीव्रताओं के भूकंप की संभावना वाला क्षेत्र है। जबकि चार करोड़ हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में बाढ़ की संभावना प्रतिवर्ष बनी रहती है तथा 68 प्रतिशत क्षेत्र में सूखे की आशंका मंडराती रहतीहै। इससे न केवल हजारों जीवन की क्षति होती है अपितु भारी मात्रा मेंनिजी, सामुदायिक और सार्वजनिक परिसम्पत्तियों को भी क्षति पहुँचती हैं।

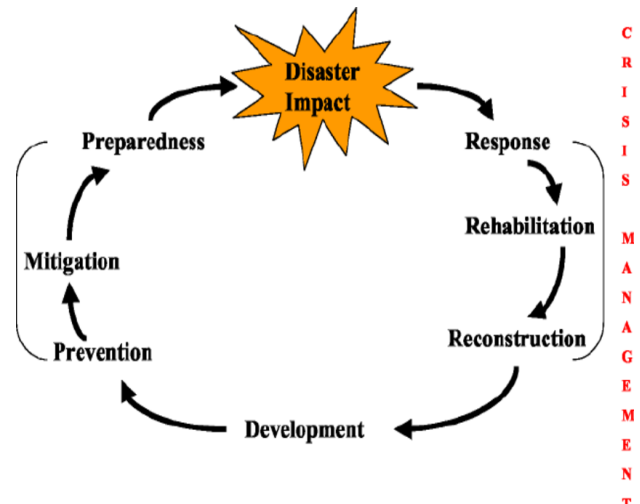


यद्यपि वैज्ञानिक और भौतिक कारकों से देश में अत्यधिक प्रगति हुई है, किन्तु प्राकृतिक आपदाओं के कारण जन-धन की क्षति में कमी होती नहीं दिखाई दे रही है। भारत सरकार ने अपने बाढ़ आपदा प्रबंधन दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन किये हैं। यह नीति अब केवल राहत पहुँचाने तक ही सीमित नहीं है, अपितु आपदाओं से निपटने की तैयारियों, उनके शमन और बचाव पर अधिक बल दिया जा रहा है। यह परिवर्तन इन धारणाओं के फलस्वरूप इस दृष्टिकोण में आया है कि विकास प्रक्रिया में जब तक आपदाशमन को उचित स्थान नहीं दिया जाता, विकास की प्रक्रिया लम्बे समय तक जारी नहीं रखी जा सकती। सरकार के इस नये

दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि आपदा शमन के उपाय विकास से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों में अपनाये जाने चाहिए। आपदा प्रबंधन का नीतिगत ढाँचे में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि निर्धन और वंचित लोग ही प्राकृतिक आपदाओं से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। बाढ़ आपदा प्रबंधन एक बहुआयामी क्षेत्र है। इसमें मौसम पूर्वानुमान, चेतावनी, बचाव, राहत, पुनर्निर्माण और पुनर्वास सम्मिलित है। प्रशासन, वैज्ञानिक, योजनाकार, स्वयं सेवक और समुदाय सभी इस बहुआयामी प्रयास में हाथ बँटाते हैं। उनकी भूमिकाएँ और गतिविधियाँ एक दूसरे की पूरक और सहायक होती हैं, इसलिये इन गतिविधियों में समन्वय नितांत आवश्यक है।



प्राकृतिक आपदाएँ, अर्थव्यवस्था, कृषि, खाद्य सुरक्षा, जल, स्वच्छता, पर्यावरण और स्वास्थ्य को सीधे-सीधे प्रभावित करती है। इसलिये अधिकांश विकासशील देशों के लिये यह चिन्ता का एक प्रमुख बड़ा कारण है। आर्थिक पहलू के अतिरिक्त इस तरह की आपदाओं का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है जिनका गम्भीरता से अध्ययन कर शमन की उपयुक्त रणनीति तैयार करने की आवश्यकता है। आज प्राकृतिक आपदाओं की पूर्व चेतावनी की अनेक प्रणालियाँ उपलब्ध हैं लेकिन वे यह सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त नहीं है कि हम आपदाओं से सुरक्षित हैं। यहीं पर आपदा प्रबन्धन की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।



राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के अनुसार बाढ़ वह मौसम की परिस्थिति है जब नदी का जल परिभाषित चिन्ह के ऊपर प्रवाहित होने लगता है। यह चिन्ह मानसून के समय नदी अफवाह के औसत आधार पर निर्धारित किया जाता है। निर्धारण की अवधि 10-15 वर्ष के बीच हो सकती है। दूसरी ओर भारतीय मौसम विज्ञान संस्थान के अनुसार सूखा वह मौसम की परिस्थिति है जब मध्य मई से मध्य अक्टूबर के बीच लगातार चार सप्ताह के बीच वर्षा की मात्रा 5 सेन्टीमीटर से कम होती है। भारत विश्व के उनकुछ एक देशों में है जहां बाढ़ और सूखा का प्रभाव लगभग प्रतिवर्ष प्राकृतिक विपदा के रूप में पड़ता है। भारत का लगभग 84 प्रतिशत क्षेत्र बाढ़ या सूखे के प्रभाव में है। स्वतंत्रता के बाद इन समस्याओं की दिशा में अनेक कार्य किये गये हैं। इसके बाद भी इन प्राकृतिक विपदाओं का प्रभाव यथावत है।

परिणाम एवं निष्कर्ष

उपर्युक्त लेख से यह विदित है कि आपदा प्रबन्धन एक अतिआवश्यक एवं कारगर उपाय होता है। जो कि आपदा की विभीषिका को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। विभिन्न प्रकार की आपदाओं जैसे चक्रवात, बाढ़, सूखा आदि में यदि सुनियोजित प्रबन्धन न किया जाये तो होने वाली जान-माल की क्षति अत्यधिक होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Singh Savindra, *Environment Geography, Prayag, Pustak Bhawan, Allahabad, 1999.*
2. Park C.C, *Ecology & Environment Management, Butterworths, London, 1980.*
3. Dwivedi, O.P. Tiwari, B.N. *Hindu Concept of Ecology and Tripathi, R.N., Environment Crisis, Indian Journal of Public Administration, 30(1), 1984.*
4. Srivastava, P.K., *Pollution and Man, Yojna, Year 36, Vol 6, Information & Broadcasting Ministry, India, Government, New Delhi, 1995.*
5. Singh, Savindra *Environment Management: Some New Dimension in Environmental Management Edited by L.R. Singh, et al. Allahabad, Geographical Geog. Deptt. Allahabad, University, Allahabad, 1983.*